नयवाद की महत्ता

(साध्वीश्री स्नेहलताश्रीजी)

नयवाद जैन दर्शन का - जैन न्याय का महत्वपूर्ण अंग है। वह वस्तु को देखने की विविध दृष्टियाँ प्रस्तुत करता है, इतना ही नहीं, परन्तु उनका समन्वय करने की भूमिका भी प्रदान करता है, और इस प्रकार मनुष्य को उदार, सहिष्णु एवं सत्पथगामी बनाने में बड़ा सहायक होता है।

नय क्या है?

जिनागमों में बताया है कि "द्रव्य के सभी भाव प्रमाण और नय द्वारा उपलब्ध होते हैं।" अर्थात् नय द्रव्य के सर्व भाव जानने का - पदार्थ का यथार्थ स्वरूप समझने का एक साधन है। यह बात तत्त्वार्थ सूत्र में "प्रमाणनयैरधिगमः" सूत्र द्वारा प्रकट की गई है।

यहाँ प्रश्न होने की संभावना है कि 'यदि पदार्थ का स्वरूप प्रमाण के द्वारा जाना जा सकता है तो नय की क्या आवश्यकता है? इस का उत्तर यह है कि 'प्रमाण के द्वारा पदार्थ का समग्र रूप से बोध होता है और नय की सहायता से पदार्थ का अंश रूप से बोध होता है।

ज्ञानप्राप्ति के लिये ये दोनों वस्तुएँ आवश्यक हैं। उदाहरण के लिये - गाय को देखने पर हमने यह जाना कि (१) यह गाय है। फिर उसके संबंध में विचार करने लगे कि (२) यह गाय रक्तवर्ण है, (३) शरीर से पुष्ट है (४) दो बछड़ोंवाली है (५) दूध अच्छा देती है। और (६) स्वभाव से भी अच्छी है। तो इसमें प्रथम विषय का ज्ञान प्रमाण से हुआ और शेष पाँच विषयों का ज्ञान नय से हुआ। 'यह गाय है' ऐसा जाना, इसमें वस्तु का समग्ररूप से बोध है, अत: वह प्रमाण रूप है, और गाय रक्तवर्ण है शरीर से पुष्ट है, आदि जो ज्ञान प्राप्त किया उसमें वस्तु का अंश रूप में बोध होता है— अत: वह नय रूप है।

जैन शास्त्रों में वस्तु के समग्र रूप से बोध को सकलादेश और अंश रूप से बोध को विकलादेश कहते हैं, अत: प्रमाण सकलादेश है और नय विकलादेश है।

"नय की व्याख्या"

नय शब्द "नी" धातु से बना है। यह "नी" धातु प्राप्त करना, ले जाना आदि अर्थ प्रकट करता है। इसके आधार पर न्यायावतार की टीका में श्रीसिद्धर्षि गणि ने नय की व्याख्या इस प्रकार की है—

अनंतधर्माध्यासितं वस्तु स्वाभिप्रेतैकधर्मविशिष्टं = नयति-प्रापयति-संवेदनमारोहयतीति नयः ।

अनंत धर्मों के संबंधवाली वस्तु को अपने अभिमत एक विशिष्ट धर्म की ओर ले जाय अर्थात् विशिष्ट धर्म को प्राप्त करवाए-बताये वह नय कहलाता है।

एक वस्तु में भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से विभिन्न धर्मों का सम्बन्ध है और ऐसी अपेक्षाएं अनन्त हैं। जैसे-गाय में रक्तत्व, पुष्टता आदि अनंत धर्म हैं, परंतु जब "यह गाय लाल है" ऐसा जानते हैं, तब यह ज्ञान अपना अभिमत एक विशिष्ट धर्म की ओर ले जाता है अत: वह नय है।

साध्वीश्री स्नेहलताश्री

किसी भी एक अंश को ग्रहण करना और शेष अंशों के प्रति उदासीनता रखना अर्थात् उनके संबंध में विरोधी या अनुकूल कुछ भी अभिप्राय न देना।

इस प्रकार वक्ता की ओर से जो भी अभिप्राय प्रकट हो वह नय कहलाता है।

उदाहरण से यह वस्तु स्पष्ट की जाएगी। ढाल के एक ओर चाँदी का झोल किया हुआ था और दूसरी ओर सोने का झोल था। यह ढाल गाँव के प्रवेश-स्थान में खड़े हुए एक पुतले के हाथ में थी। अब एक बार दो विभिन्न दिशाओं से दो यात्री उधर आ निकले और ढाल का निरीक्षण करके अपना अभिप्राय प्रकट करने लगे। एक ने कहा कि 'यह ढाल चाँदी के झोल वाली है, अत: बहुत सुन्दर लगती है।' दूसरे ने कहा : 'यह ढाल चाँदी के नहीं परंतु सोने के झोलवाली है, अत: सुन्दर लगती है।' प्रथम व्यक्ति ने कहा, 'तू अंधा है इसी से चाँदी के झोलवाली ढाल को सोने के झोलवाली - बताता है।' दूसरे ने कहा, 'तू मूर्ख है, इसीलिये सोने और चाँदी के बीच का अन्तर नहीं जान सकता।

इस प्रकार वाद-विवाद होते-होते बात बढ़ गई और वे लड़ने को उद्यत हो गये। इतने में गांव के कई समझदार व्यक्ति उधर आ पहुँचे और दोनों को शांत करते हुए बोले— "भाइयो! इस प्रकार लड़ने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारे बीच जो मतभेद हो वह हमसे कहो।" तब दोनों ने अपनी-अपनी बात कही। ग्रामवासियों ने कहा, 'यदि तुम्हारे लड़ने का कारण यही हो तो एक काम करो—एक दूसरे के स्थान पर आजाओ। उन दोनों ने वैसा ही किया तो अपनी भूल समझ में आ गई और दोनों लज्जित हो गये।

इस दृष्टांत का सार यह है कि वस्तु को हम जैसा देखते हैं—मात्र वैसी ही वह नहीं है। वह अन्य स्वरूप की भी है। यह अन्य स्वरूप हमारे ध्यान में न आए, मात्र इसीलिये हम उसका निषेध नहीं कर सकते।

यदि निषेध करें तो यात्रियों जैसी स्थिति हो जाती है अर्थात् विचारों के संघर्ष में उतरना पड़ता है और ऐसा करने पर दोनों के बीच द्वेष पैदा होता है।

यदि यात्रियों ने इतना ही कहा होता कि 'यह ढाल रुपहरी है' 'यह ढाल सुनहरी है' तो यह ज्ञान नयरूप होने से सच्चा होता और

अहं भरा हो हृदय में, नम्र भाव को दूर ।
जयन्तसेन दुःखद यही, जीवन में भरपूर ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उससे कलह उत्पन्न होने का प्रसंग ही नहीं आता, परंतु उन्होने वस्तु में रहे हुए अंशों का निषेध किया, अत: वह ज्ञान नयाभास बन गया, मिथ्या हो गया और उपद्रव का कारण बना।

इस जगत में अपनी स्थिति भी उक्त यात्रियों जैसी ही है। अपनी अल्पमति से हम जो कुछ भी समझें, उसे ही पूर्ण सच्चा मान लेते हैं और अन्य व्यक्ति के ज्ञान को - अन्य की मान्यता को असत्य घोषित कर देते हैं, परंतु दूसरे के कथन में भी अपेक्षा से सत्य है, यह वस्तु हम भूल जाते हैं और इसी से झूठे विवाद, कलह अथवा युद्ध का आरंभ होता है।

नयवाद कहता है कि दूसरे का कथन भी सत्य हो सकता है, परंतु उसकी अपेक्षा क्या है? यह जानना चाहिये।

यदि आप इस अपेक्षा को जानेंगे तो उसे असत्य, झूठा अथवा बनावटी कहने का अवसर ही नहीं आएगा।

जो दूसरे के दृष्टिबिन्दु को समझने का इच्छुक है-वही सत्यप्रेमी है।

नय के प्रकार :

नय के मुख्य दो प्रकार हैं : द्रव्यार्थिक और दूसरा पर्यायार्थिक। इनमें से द्रव्य को - मूल वस्तु को लक्ष्य में लेनेवाला "द्रव्यार्थिक" कहलाता है, और पर्याय को — रूपान्तरों को लक्ष्य में लेनेवाला पर्यायार्थिक कहलाता है।

यहाँ इतना स्पष्टीकरण कर दें कि जैन-दर्शन अनेकान्त को माननेवाला होने से ज्ञानपूर्वक क्रिया और क्रियापूर्वक ज्ञान मानता है, निश्चय पूर्वक व्यवहार और व्यवहार पूर्वक निश्चय मानता है तथा शब्दपूर्वक अर्थ और अर्थपूर्वक शब्द मानता है, परंतु मात्र ज्ञान या मात्र क्रिया : मात्र निश्चय या व्यवहार, मात्र शब्द या मात्र अर्थ ऐसा नहीं मानता।

वह प्रत्येक नय के प्रति न्यायदृष्टि रखता है और उसके समन्वय में ही श्रेय स्वीकार करता है।

जैन शास्त्रों में निश्चय और व्यवहार का उल्लेख कई बार आता है किसी भी वस्तु के दोनों दृष्टिकोण प्रस्तुत किये जाते हैं। 'भ्रमर का रंग कैसा ?' इस प्रश्न के उत्तर में निश्चय नय कहता है कि 'भ्रमर पांचों वर्ण का है, क्योंकि उसका कोई भाग श्याम है उसी प्रकार कोई भाग रक्त - नील, पीत, और श्वेत वर्ण का भी है। यहाँ व्यवहार नय बताता है कि 'भ्रमर काले रंग का है' क्योंकि उसका अधिकांश भाग काला है' अथवा उसका काला भाग व्यवहार में आता है।

निश्चय की दृष्टि साध्य की ओर होती है, व्यवहार की दृष्टि साधन की ओर होती है। इन दोनों दृष्टियों के मेल से कार्यसिद्धि होती है। जो मात्र निश्चय को ही आगे करके व्यवहार का लोप करते हैं अथवा व्यवहार को आगे करके निश्चय का लोप करते हैं, वे जैन दृष्टि से सच्चे मार्ग पर नहीं।

निश्चय को आगे करके व्यवहार लोप करने पर सभी धार्मिक क्रियाएँ, धार्मिक अनुष्ठान— यावत् धर्मशासन और संघव्यवस्था निरर्थक सिद्ध होती है। व्यवहार को आगे करके निश्चय का लोप करने पर परमार्थ की प्राप्ति नहीं की जा सकती, और कार्य सिद्धि असंभव बन जाती है।

निश्चय और व्यवहार का समन्वय जैन दृष्टि है, अकेला निश्चय या अकेला व्यवहार मिथ्या दृष्टि है।

श्रीमल्लवादी कृत नयचक्र में नयके बारह प्रकार किये गए हैं और उन पर अति गहन विचारणा की गई है, परंतु यहाँ विशेष प्रचलित सात नयों का विचार करेंगे।

नय के मुख्य दो विभाग जिनमें एक द्रव्यार्थिक नय और दूसरा पर्यायार्थिक नय = "संभवनाथ के स्तवन में लिखा है।"

चार द्रव्यार्थिकत्रण तथारे, पर्यायार्थिक धारः।
जेहने नयमत मन वस्योरे, तेहिज जग आधार, प्रभुजी ०
नैगम संग्रह व्यवहार छे रे, सूत्र ऋजु सुखकारः।
शब्द समभिरूढ कह्या रे, एवंभूत अधिकार, प्रभुजी०......

द्रव्यार्थिक नय के तीन प्रकार है: (१) नैगम (२) संग्रह और (३) व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार प्रकार है : (१) ऋजुसूत्र (२) शब्द (३) समभिरूढ और (४) एवंभूत। इन दोनों प्रकारों को साथ गिनने पर नय की संख्या सात होती है और यही विशेष प्रसिद्ध है।

इन सात नयों के विशेष प्रकार भी होते हैं। एक प्राचीन गाथा में तो ऐसा भी कहा है कि सात नय में से प्रत्येक नय शतविध अर्थात् सौ प्रकार का है, जिससे उसकी संख्या ७०० होती है।

सातों नयों का सूक्ष्म अर्थ इस प्रकार बताते हैं ।

सात नयों का संक्षिप्त अर्थ

नैगमनय - लोक व्यवहार में प्रसिद्ध अर्थ को ग्रहण करता है, अर्थात् सामान्य विशेष उभय को स्वीकार करता है।

संग्रहनय - विशेष को गौण मानकर सामान्य को ही प्रधान मानता है।

व्यवहार नय- वस्तु के सामान्य धर्म को गौण करके जो विशेष है उसे ही प्रधानता देता है।

ऋजुसूत्र नय - वर्तमान कालीन अर्थ को ही ग्रहण करता है- जैसे एक मनुष्य भूतकाल में राजा था, परंतु आज भिखारी हो तो यह नय उसे राजा न कहकर भिखारी ही कहेगा, क्योंकि वर्तमान में उसकी स्थिति भिखारी की है।

शब्दनय - पर्याय शब्दों का एक ही अर्थ ग्रहण करता है- जैसे अर्हत्-जिन-तीर्थंकर आदि।

समभिरूढ़ नय - पर्याय शब्द का भिन्न—भिन्न अर्थ ग्रहण करता है अथवा रूढ़ अर्थ में भिन्न—भिन्न अर्थ की सम्मति दे।

एवंभूतनय - एवं अर्थात् व्युत्पत्ति के अर्थानुसार, 'मूल' अर्थात् एवंभूतनय कहलाता है।

इस नय की दृष्टि से अर्हत् शब्द का प्रयोग (तभी होगा) तभी उचित माना जाये जब सुरासुरेन्द्र उनकी पूजा कर रहे हों, जिन शब्द का प्रयोग तभी उचित गिना जाए, जब वे शुक्ल-ध्यान धारा में चढ़कर रागादि रिपुओं को जीतते हों और तीर्थंकर शब्द का प्रयोग तभी उपयुक्त माना जाये जब वे समवसरण में विराजमान होकर चतुर्विध संघ की और प्रथम गणधर की स्थापना करते हों। राजा तभी माना जाये जब वे सिंहासन पर बैठे हों। शिक्षक तभी माने जायें जब छात्रों को पढ़ाते हों, गुरु महाराज तभी माने जायें जब वे पाट पर विराजमान हो, अनेक लोगों को धर्म का उपदेश देते हों, इस प्रकार एवंभूतनय अर्थ के अनुसार ही प्रवृत्ति ग्रहण करता है।

अहंकार करता सदा, तन धन मति का नाश ।
जयन्तसेन वइनय विभव, देता ज्ञान प्रकाश ॥

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org